बर्फीली जमीन पर विजय पताका

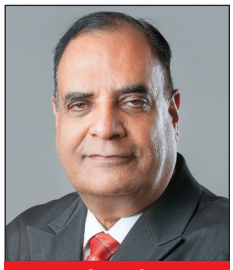

आलोक मेहता

बादल गरजते हैं लेकिन हमेशा बरसते नहीं। अधिक ठंडे इलाकों में जमीन पर भी बर्फ जम जाती है। आकाश में बिजली कड़कने का जमीन पर अधिक असर नहीं होता। हां, पिघलने वाली बर्फ पर दौड़ लगाकर विजय पताका गाड़ना कठिन होता है। आजकल राजनीतिक दलों और नेतृत्व की स्थिति लगभग वैसी ही है। जमीन पक्की नहीं रह पाती और उनकी कामना 'अखंड भारत' पर अपनी सफलता पाने की रहती है। भारतीय जनता पार्टी के संगठनात्मक चुनाव प्रारंभिक 'बुजुर्ग गर्जन' के बाद शांतिपूर्ण चतुराई से संपन्न हो गए। किसी प्रदेश में विरोध का बिगुल नहीं बजा। साढ़े दस करोड़ सदस्यता के दावे वाली पार्टी में चुनौती की कोई गुंजाइश नहीं दिखाई दी। अमित शाह के नेतृत्व की कमजोरियां इक्का-दुक्का बंद कमरों में गिनाई जाती रहीं। उनके कंधे पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का मजबूत हाथ और संघ का वरदान होने के कारण चींटी तक अध्यक्ष की कुर्सी के पास नहीं आ सकती थी। गणतंत्र दिवस की वर्षगांठ की पूर्व संध्या पर सर्वशक्तिशाली राजनीतिक दलों के नए लोकतांत्रिक अध्याय का पठन-पाठन दिलचस्प लगता है।

यह वही पार्टी है जो पूर्व जन्म में भारतीय जनसंघ कही जाती थी। अक्टूबर 1951 में डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी द्वारा स्थापित जनसंघ में कांग्रेसी, हिंदू महासभाई, संघी, अर्ध समाजवादी शामिल थे। हां, हिंदुत्व राष्ट्रवाद का सिद्धांत सर्वोपरि था। फिर भी मौलीचंद्र शर्मा, रघुवीर, बलराज मधोक जैसे नेताओं के सामने विभिन्न मुद्दों पर बहस करने वाले नेता-कार्यकर्ता थे। बाद में बलराज मधोक तो स्वयं विद्रोही हो गए। दीनदयाल उपाध्याय और अटल बिहारी वाजपेयी के अध्यक्षीय कार्यकाल में पार्टी अधिवेशनों में सार्वजनिक रूप से संगठनात्मक कमजोरियों और नीतियों पर बहस होती थी। अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व काल के ग्वालियर और दिल्ली अधिवेशनों में मैंने स्वयं गर्मागर्म बहस सुनी हैं। अटलजी की उदार छवि को लेकर भी पार्टी तथा संघ में आवाज उठती थी। अटलजी के उत्तराधिकारी लालकृष्ण आडवाणी और मुरली मनोहर जोशी को समय-समय पर अपनों के ही विरोधी स्वर सुनने पड़े। कुशाभाऊ ठाकरे ने पार्टी अध्यक्ष रहते हुए अपने प्रिय अटलजी की केंद्रीय सरकार की खामियां मुझे एक टी.वी. इंटरव्यू में भी गिना दी थीं। इस पर कभी किसी ने शिकायत नहीं की। बंगारू लक्ष्मण तो गंभीर आरोपों में फंसने से पार्टी में कोप भाजन बने। वेंकैया नायडू के नेतृत्व काल में कुछ मुद्दों पर पार्टीजनों की नाराजगी सामने आती रही। राजनाथ सिंह दो बार अध्यक्ष बने। जय-पराजय को लेकर उन्हें मीठी-कड़वी बातें सुननी पड़ीं। नितिन गडकरी को हटाने के लिए तो गांधीनगर से दिल्ली और नागपुर तक कागज-पत्र घूमते रहे। इस पृष्ठभूमि में अमित शाह के 'अंगदी पांव' जमने की स्थिति सचमुच ऐतिहासिक है। दिल्ली और बिहार की चुनावी पराजय पर तो कोई भी दलील दे सकता है कि किसके अध्यक्षता काल में सभी चुनाव जीते गए? लेकिन बिहार ही नहीं, गुजरात, हरियाणा, महाराष्ट्र, कर्नाटक, जम्मू-कश्मीर और दिल्ली में नाक के नीचे बैठे कई नेता, कई केंद्रीय मंत्री, सांसद-विधायक 'अध्यक्षजी' के कामकाज और कड़े रुख का दु:खड़ा सुनाते मिल जाते हैं। लेकिन मोदी-भागवत की अनुशासनात्मक लक्ष्मण रेखा बुजुर्ग हाथी भी पार नहीं कर पाए। इसे कहते हैं- सशक्त नेतृत्व।

जनसंघ-भाजपा ने बड़े उतार-चढ़ाव देखे हैं। लोकसभा चुनाव में कभी 35 सीटें मिलीं, कभी 77, 120,182,116 और फिर 282। इसलिए भविष्य में सफलता के झंडे गाड़ते रहने के लिए मोदी-शाह की जोड़ी को शायद फिसलन वाली बर्फ हटाकर जमीन मजबूत रखने के लिए अधिक मशक्कत करनी पड़ेगी। एक बार विजय पताका लहराने पर अच्छा लगता है और आत्मविश्वास बढ़ता है, लेकिन आंधी-तूफान में पताका संभाले हुए बढ़ते रहना और एक बड़ी टीम को साथ दौड़ाते रहने के लिए धैर्य, स्नेह और साहस की आवश्यकता होती है। सरकार और संगठन से संघ या जनता की अपेक्षा केवल लक्ष्य की सफलता की रहती है।

भाजपा से अधिक चुनौतीपूर्ण स्थिति 1885 में स्थापित कांग्रेस पार्टी की है। दाराभाई नौरोजी, गोपालकृष्ण गोखले, मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू, महात्मा गांधी, सुभाषचंद्र बोस, जवाहरलाल नेहरू, इंदिरा गांधी, राजीव गांधी के अध्यक्षीय काल में भी पार्टी में असहमतियों और विरोध के स्वर उठे। मुंबई, गांधीनगर, दिल्ली में हुए कांग्रेस के कुछ अधिवेशनों में स्वयं इंदिरा गांधी सरकार की कमियों पर खरी-खोटी सुनाते प्रादेशिक ही नहीं, जिला स्तर के नेताओं को मैंने सुना है। हां, 1980 के बाद जरूर स्थिति बदली। गांधी-सुभाष, नेहरू-इंदिरा-राजीव काल में विद्रोह हुए - पार्टी तक टूटी। कारण जो भी रहे, सोनिया गांधी को केवल एक बार संगठनात्मक चुनाव में जितेंद्र प्रसाद की चुनौती का सामना करके विजय हासिल करनी पड़ी। उसके बाद उन्हें किसी ने चुनौती नहीं दी। हां, सोनिया गांधी के अध्यक्षीय काल में उनके नामजद प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह सहित कोर ग्रुप की बंद कमरों में आलोचना होती रही। सोनिया गांधी के दरबार में सरकार और संगठन की बुराइयां शांत भाव से सुनी जाती रहीं। सुधारात्मक कदम नहीं उठाने और मनमोहन सरकार की भारी विफलताओं से कांग्रेस को 2014 में ऐतिहासिक पराजय का सामना करना पड़ा। इस पराजय से थोड़ा पहले और बाद में लगातार राहुल गांधी को अध्यक्ष पद सौंपने की आवाज उठती रही हैं। लेकिन पार्टी का एक बड़ा वर्ग बंद कमरों में राहुल गांधी के कामकाज पर अप्रसन्नता के साथ सफलता पर संदेह व्यक्त करते दिखाता है। लेकिन विरोध का बिगुल कोई नहीं बजाता। कांग्रेस के लिए तो रास्ता अधिक बर्फीला और फिसलने वाला है। केवल 'पताका' हाथ में रहने मात्र से क्या विजय का लोकतांत्रिक बिगुल बज सकता है

छाया: त्रिभुवन तिवारी

भाजपा के संगठनात्मक चुनाव प्रारंभिक 'बुजुर्ग गर्जन' के बाद शांतिपूर्ण चतुराई से संपन्न हो गए। किसी प्रदेश में विरोध का बिगुल नहीं बजा। साढ़े दस करोड़ सदस्यता के दावे वाली पार्टी में चुनौती की कोई गुंजाइश नहीं दिखाई दी।

www.outlookhindi.com